# नबी (सल्ल०) की सीरत से रहनुमाई

## मुस्लिम नौजवानों के लिए

(मुल्क में बढ़ते हुए नफ़रत के माहौल में)

मुहीयुद्दीन ग़ाज़ी

# विषय सूची


- मक़सद (लक्ष्य) पर निगाह रखें 4
- नमाज़ और सब्र से मदद हासिल करें 5
- मुसलमानों की दीनी तरबियत का इन्तिज़ाम करें 7
- मायूसी से दूर रहें 8
- अख़लाक़ी ताक़त अहम ताक़त है, उसे बढ़ाते रहिए 10
- हमदर्दों की मदद करें, उनकी तादाद बढ़ाते रहें 10
- नए मौक़े तलाश करते रहें 12
- कमज़ोरों की ताक़त बनें 13
- मज़लूमों की मदद के लिए आगे बढ़ें 14
- ख़ामोशी को अपनाएँ, इश्तिहारबाज़ी (प्रचार) से बचें 14
- टकराव से बचें 15
- माहौल को पुरअम्न (शान्तिमय) बनाए रखें 16
- कमज़ोरों का इस्तिक़बाल करें, असर और पहुँच रखनेवालों को तलाश करें 17
- किसी को हमेशा का दुश्मन न समझें 18
- अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को गाली देनेवाला जब नबी का मुहाफ़िज़ बन गया 19
- "इस्लाम का दुश्मन, इस्लाम की ओर बुलानेवाला बन गया" 22
- इस्लामी दावत की बुलन्दी और पाकी 32
- हालात बदलने की कोशिश तेज़ करें 35

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रह्मवाला है।"

# नबी (सल्ल॰) की सीरत से रहनुमाई

अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की सीरत में मुसलमानों के लिए बहुत शिक्षाएँ और सबक़ हैं। सीरत सिर्फ़ पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़िन्दगी को ही नहीं कहते, बल्कि वह पूरा ज़माना है जिसपर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने असर डाला। मक्का और मदीना, फिर पूरे अरब में जो हालात पेश आए और उन हालात में अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) और उनके सहाबा (रज़ि॰) ने जो रवैया अपनाया उसमें रहनुमाई का बड़ा सामान है।

मक्की दौर में अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की जमाअत माद्दी (भौतिक) लिहाज़ से कमज़ोर और तादाद के हिसाब से कम थी। समाज पूरे तौर पर मिला-जुला था। ताक़त और अक्सरियत (बहुसंख्यक) वाला वर्ग अपने मज़हब और नज़रिए को कमज़ोर (अल्पसंख्यक) समाज पर ताक़त से थोपना चाहता था। ऐसे संगीन हालात में अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने क्या रणनीति अपनाई? सहाबा (रज़ि॰) को किस सुलूक (रवैये) की तालीम (शिक्षा) दी? हालात को सामान्य रखने के लिए क्या क़दम उठाए? इन सवालों के जवाब ज़रूर तलाश करने चाहिएँ।

आज भी दुनिया के वे सभी इलाक़े, जहाँ मुसलमान तादाद के हिसाब से कम और माद्दी वसाइल के पहलू से कमज़ोर हैं, मक्का की ज़िन्दगी से बहुत कुछ सीख सकते हैं। अगली लाइनों में हम कुछ पहलुओं पर रौशनी डालेंगे।

## मक़सद (लक्ष्य) पर निगाह रखें

अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) और उनके सहाबा (रज़ि॰) का अपने मक़सद से लगाव और उनके लिए मर-मिटना बड़े कमाल दर्जे का था और हमेशा उसी तरह रहा। रास्ता रोकने या बदलनेवाली बहुत-सी रुकावटें आती रहीं, लेकिन मक़सद पर निगाह जमी रही और क़दम उसी की तरफ़ बढ़ते

रहे। धमकियों और कठिनाइयों ने रास्ता बन्द करने की कोशिश की, लालचों और पेशकशों (प्रलोभनों) ने रास्ता बदलने की कोशिश की, लेकिन वे सारी कोशिशें नाकाम हुईं।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का समाजी बायकॉट किया गया, नबी (सल्ल॰) ने उसके नुक़सान से अपने साथियों को बचाने के उपाय तो किए, लेकिन उसे अपनी कोशिशों का अस्ल मक़सद नहीं बनने दिया।

लोग नबी (सल्ल॰) को और उनके पैग़ाम को बदनाम करने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते। नबी (सल्ल॰) ज़रूरी हद तक जवाब भी देते, लेकिन उसमें उलझकर अपनी कोशिशों को बिखरने नहीं दिया। नबी (सल्ल॰) पर ईमान लानेवाले ग़ुलामों और दासियों को बुरी तरह सताया जाता। उन्होंने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और दूसरे मालदार सहाबा के ज़रिए से उनको आज़ाद कराने और सुरक्षा देने का इन्तिज़ाम तो किया, लेकिन अपना सारा ध्यान अपने मक़सद (लक्ष्य) पर रखा।

उसका नतीजा यह निकला कि दूसरे वक़्ती मसले आते और हल होते रहे, लेकिन मक़सद की तरफ़ सफ़र जारी रहा। उसके नतीजे में काफ़िला आगे बढ़ता गया और उससे जुड़े हुए लोगों की ताक़त बढ़ती गई। उसके नतीजे में वक़्ती मसलों की सख़्ती भी धीरे-धीरे कम होती गई। मक़सद पर निगाह होने के नतीजे में हबशा (इथोपिया) के बादशाह की हिमायत और ताईद हासिल हुई। हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) और हज़रत उमर (रज़ि॰) जैसे प्रभावशाली लोग इस मक़सद को पूरा करने में शामिल हुए और मदीने के दो क़बीलों, औस व ख़ज़रज के सरदारों ने इस दीन को सीने से लगाया। वक़्ती मसलों में उलझ जाने से यह ताक़त कभी न हासिल होती। मक़सद पर निगाह होने की वजह से दीनी सतह बुलन्द हुई, अख़लाक़ी मज़बूती में बढ़ोत्तरी हुई। नए-नए मैदान खुले और दारे-अरक़म में जमा होनेवालों को बीस साल होने से पहले ही सारे अरब के लोगों ने सरदारी सौंप दी।

## नमाज़ और सब्र से मदद हासिल करें

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की सीरत (ज़िन्दगी) पर लिखी गई किताबों

में मक्का के दौर की जितनी तस्वीरें मिलती हैं उनमें सबसे ज़्यादा तस्वीरें नमाज़ और सब्र की हैं।

मक्का में इस्लाम की शुरुआत नमाज़ से हुई और इस्लामी पैग़ाम की शुरुआत सब्र से हुई। इस्लाम की शुरुआत से ही अल्लाह के नबी (सल्ल॰) और उनकी बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) साथ नमाज़ पढ़ा करते थे। फिर जैसे-जैसे लोग इस्लाम में दाख़िल होते गए वे बहुत-सी जगहों पर छिपकर नमाज़ पढ़ने लगे।

फिर जैसे-जैसे इस्लाम के पैग़ाम के फैलने की ख़बर मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों को होती गई, उनकी तरफ़ से सताने और परेशान करने और जवाब में मुसलमानों की तरफ़ से सब्र का सिलसिला शुरू हो गया और आख़िरी वक़्त तक जारी रहा। जितनी सख़्ती से मुसलमानों को सताया जाता, मुसलमान उतनी ही मज़बूती के साथ सब्र करते।

नमाज़ इस बात की निशानी है कि अल्लाह से मोमिन का रिश्ता बहुत मज़बूत है और सब्र इस बात की निशानी है कि मोमिन का अपने दीन और मक़सद से रिश्ता बहुत मज़बूत है।

अल्लाह से मज़बूत ताल्लुक़ हो तो उसपर भरोसा करने की सिफ़त (गुण) पैदा होती है, दीन से मज़बूत ताल्लुक़ हो तो सब्र की ख़ूबी पैदा होती है। जो क़ौम सब्र और (अल्लाह पर) भरोसा अपने अन्दर पैदा कर लेती है उसे कोई नहीं हरा सकता। सब्र और भरोसा हो तो आदमी बहुत-से सख़्त ख़तरों से बचा रहता है। जैसे, वह न तो हिम्मत हारता है और न ही मायूस होता है। न वह घबराहट और बेचैनी का शिकार होता है। वह ग़ुस्से और जज़्बात के जाल में नहीं फँसता, अपने मक़सद से पीछे नहीं हटता, अपना रास्ता नहीं बदलता, उसकी निगाह हमेशा मन्ज़िल पर होती है। वह उसे अपनी निगाहों से ओझल नहीं होने देता।

नबी (सल्ल॰) की सीरत से हमें यह सबक़ मिलता है कि एक मुसलमान अपनी मन्ज़िल तक पहुँचने के लिए तेज़ रफ़्तार होता है, लेकिन जल्दबाज़ी नहीं करता। वह अपनी बात रखता है, दूसरों की बात सुनता है, लेकिन दूसरों

की बातों में उलझता नहीं है। हैरत की बात है कि तेरह साल की लम्बी और सख़्त आज़माइशों के बावजूद अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपने मुख़ालिफ़ों (विरोधियों) के लिए न अज़ाब की दुआ की और न ही उनके बरबाद होने की।

कितनी अजीब बात है कि ज़ुल्म और ज़्यादतियों के मुक़ाबले में नबी (सल्ल॰) ने जंग भी नहीं छेड़ी और दीन के मामले में किसी समझौते को भी क़बूल नहीं किया! यह सब कुछ नमाज़ और सब्र की वजह से हुआ।

## मुसलमानों की दीनी तरबियत का इन्तिज़ाम करें

मुसलमान चाहे कितने ही ज़्यादा ख़तरों और मसलों का शिकार हों, दीनी तालीम व तरबियत उनकी सबसे बड़ी ज़रूरत है। इसी लिए अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल॰) ने मक्का शहर में पहले दिन से ही मुसलमानों की दीनी तालीम व तरबियत को सबसे ज़्यादा अहमियत दी।

एक तरफ़ तो हिकमत को सामने रखते हुए नबी (सल्ल॰) ने ख़ामोशी से बग़ैर किसी एलान और इश्तिहार (प्रचार) के दावत का तरीक़ा इख़्तियार किया था, दूसरी तरफ़ मुसलमानों की बुनियादी ज़रूरत को पूरा करने के लिए नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अरक़म (रज़ि॰) के कुशादा (बड़े) घर में तालीम का इन्तिज़ाम कर रखा था, जहाँ मुसलमान लोगों की निगाहों से बचकर जमा होते और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से दीन की तालीम हासिल करते।

इसके अलावा जो लोग दारे-अरक़म से तालीम हासिल कर लेते उन्हें शिक्षक बनाकर अलग-अलग घरों में छोटे-छोटे गरोह बनाकर तालीम देने के लिए भेजा जाता था। इसी लिए हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-ख़त्ताब यानी हज़रत उमर (रज़ि॰) की बहन और उनके पति हज़रत सईद-बिन-ज़ैद यानी हज़रत उमर (रज़ि॰) के चाचा के बेटे और उनके साथ एक और सहाबी हज़रत नुऐम-बिन-अब्दुल्लाह इन तीनों के लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) को उस्ताद (शिक्षक) बनाया था, और वे हज़रत सईद (रज़ि॰) के घर आकर उनको क़ुरआन सिखाते थे।

मुसलमान जहाँ कम होते हैं माद्दी (भौतिक) लिहाज़ से कमज़ोर होते हैं

और माल व तादाद के तौर पर कहीं ज़्यादा ताक़तवर मज़हबी और तहज़ीबी गरोहों से घिरे होते हैं, वहाँ उनकी जान व माल से ज़्यादा मज़हबी और तहज़ीबी पहचान को ख़तरे होते हैं। कभी मुख़्तलिफ़ मज़हबों के लड़के-लड़कियों का आपस में शादियों का मसला खड़ा हो सकता है, कभी दीन से फिर जाने का फ़ितना खड़ा हो सकता है। कभी शिर्क व इलहाद (नास्तिकता) से भरे हुए ख़यालात रिवाज पा सकते हैं। ऐसे माहौल में उनको दीनी तालीम व तरबियत की सख़्त ज़रूरत होती है।

## मायूसी से दूर रहें

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की हिदायत पर मक्का से सहाबा (रज़ि॰) का एक गरोह हबशा (इथोपिया) के लिए रवाना हुआ। यह वह समय था जब मक्का में दुश्मनी हद से ज़्यादा बढ़ी हुई थी और वहाँ मुसलमानों की ज़िन्दगी तंग हो गई थी। हबशा जानेवाले गरोह में हज़रत आमिर-बिन-रबीआ (रज़ि॰) और उनकी बीवी हज़रत लैला (रज़ि॰) भी थीं। सफ़र की तैयारी के वक़्त आमिर (रज़ि॰) किसी ज़रूरत से बाहर गए हुए थे और उनकी बीवी लैला घर में थीं। अचानक हज़रत उमर (रज़ि॰) उधर आ गए। उस वक़्त तक वे मुसलमान नहीं हुए थे और मुसलमानों पर ज़ुल्म करने में आगे-आगे रहते थे। उन्होंने सफ़र की तैयारी करते हुए देखा तो पूछा, "अब्दुल्लाह की माँ! क्या कहीं जाने का इरादा है?" उन्होंने कहा, "हाँ! तुम लोगों ने हमपर बहुत ज़ुल्म किए हैं और बहुत तकलीफ़ें दी हैं, अल्लाह की क़सम! अब हम अल्लाह की ज़मीन में कहीं निकल जाएँगे। हमें उम्मीद है कि अल्लाह हमारे लिए कोई रास्ता निकालेगा!" जवाब में उमर (रज़ि॰) ने कहा, "अल्लाह तुम्हारे साथ रहे! लैला कहती हैं कि उस वक़्त मैंने उमर के चेहरे पर ऐसा असर देखा जो पहले कभी नहीं देखा था। वह चले गए, साफ़ दिख रहा था कि हमें जाता देखकर उनके दिल को दुख हुआ है। कुछ देर के बाद जब आमिर (रज़ि॰) घर वापिस आए तो मैंने कहा, "अब्दुल्लाह के अब्बा! काश आप देखते कि उमर हमारे जाने से कितने उदास हैं और उनका दिल कैसा पिघल रहा है!" आमिर (रज़ि॰) ने कहा, "तुम्हें क्या लगता है? क्या तुम्हें उमर के हिदायत पाने की उम्मीद लग रही है?" लैला (रज़ि॰) ने कहा, "हाँ मुझे उम्मीद लग रही है।" उनके जवाब

में आमिर (रज़ि॰) ने कहा, "अल्लाह की क़सम! ऊँट या गधा तो मुसलमान हो सकता है, मगर उमर ईमान लानेवाला नहीं है। (हदीस : हाकिम, तबरानी)

ऐसे हालात में जबकि ज़ुल्म और सितम हद से बढ़ा हुआ था और ज़ुल्म करनेवालों में एक बड़ा नुमायाँ नाम उमर-बिन-ख़त्ताब का था, एक एहसास हज़रत आमिर-बिन-रबीआ (रज़ि॰) का था, जो मायूसी से भरा हुआ था और दूसरा एहसास उनकी बीवी हज़रत लैला (रज़ि॰) का था, जिसमें उम्मीद शामिल थी।

इन दोनों के अलावा एक सोचने का अन्दाज़ अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का था, जिसमें अल्लाह की मदद का पूरा यक़ीन था। नबी (सल्ल॰) दुआ फ़रमाते, "ऐ अल्लाह! अबू-जह्ल या उमर-बिन-ख़त्ताब दोनों में से जो तुझे पसन्द हो, उससे इस्लाम को ताक़त अता कर।" (हदीस : तिरमिज़ी, अहमद)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की दुआ क़बूल हुई और हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) मुसलमान हो गए। मुसलामन होने के बाद वे ज़िन्दगी-भर दीन की ताक़त को बढ़ाने और उसका बोल-बाला करने में लगे रहे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) कहते हैं, "जब से उमर (रज़ि॰) मुसलमान हुए हम ताक़तवर और कामयाब रहे।" (हदीस : बुख़ारी)

मालूम हुआ कि इस्लाम का सफ़र उम्मीद के साए में बढ़ता है। जब ज़ुल्म व सितम के अंधेरे ख़तरनाक हद तक बढ़े हुए होते हैं तब भी ताक़त व बुलंदी के मक़ाम पर पहुँचने की उम्मीद हमेशा बाक़ी रहती हैं। यही नहीं, बल्कि इसकी भी पूरी उम्मीद रहती है कि जो लोग अभी दुश्मनी में आगे-आगे हैं, जिनके हाथ मुसलमानों के ख़ून से रंगे हुए हैं, वे भी इस्लाम के पैग़म्बर से मुतास्सिर (प्रभावित) होकर इस्लाम के प्रचारक और झंडाबरदार बन जाएँ, जो इस्लाम को नुक़सान पहुँचाने के लिए तैयार हैं उनकी ताक़तें इस्लाम की मदद के लिए वक़्फ़ (समर्पित) हो जाएँ। अगर उमर, हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) बन सकते हैं तो इस्लाम का बड़े-से-बड़ा दुश्मन इस्लाम का जांनिसार (जान न्योछावर करनेवाला) साथी बन सकता है। जिसे यक़ीन न आए वह हज़रत उमर (रज़ि॰) के मुसलमान होने से पहलेवाली ज़िन्दगी को पढ़े, फिर मुसलमान होने के बाद की ज़िन्दगी को देखे।

## अख़लाक़ी ताक़त अहम ताक़त है, उसे बढ़ाते रहिए

एक बार ऐसा हुआ कि मक्कावालों की हरकतों से तंग आकर हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) हबशा के लिए निकल पड़े। रास्ते में उनकी मुलाक़ात उनके एक जानकार इब्नुद-दग़िना से हुई। वे मक्का के प्रभावशाली लोगों में से थे। उन्होंने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "तुम्हारी क़ौम ने मेरा जीना मुश्किल कर दिया है, अब मैं कहीं दूर जाकर अल्लाह की इबादत करूँगा।" इसपर इब्नुद-दग़िना ने कहा, "आप जैसे इनसान को न निकाला जाएगा और न निकलने दिया जाएगा। आप तो मिस्कीनों और ग़रीबों की मदद करते हैं, रिश्ते जोड़ते हैं, लोगों के बोझ उठाते हैं, मेहमान-नवाज़ी करते हैं और मुसीबतों में काम आते हैं। वापस चलिए, मैं आपको पनाह दूँगा। आप आज़ादी से अपने रब की इबादत करें।" वे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को अपने साथ लाए और क़ुरैश के सरदारों के बीच खड़े होकर एलान कर दिया कि अबू-बक्र मेरी पनाह में रहेंगे, वे इसी शहर में रहेंगे। न उन्हें निकाला जाएगा, न निकलने दिया जाएगा।

मालूम हुआ कि आला अख़लाक़ी सिफ़ात (उच्च नैतिक गुण) बहुत बड़ी ताक़त होती हैं। अगर मुसलमान अल्पसंख्यक होते हुए माद्दी (आर्थिक) संसाधनों के लिहाज़ से बहुत कमज़ोर हों तो भी आला अख़लाक़ी सिफ़ात की वजह से उन्हें समाज में इज़्ज़त का मक़ाम मिलता है।

## हमदर्दों की मदद करें, उनकी तादाद बढ़ाते रहें

जिस दौर में मक्का शहर में मुसलमानों पर ज़ुल्म व अत्याचार अपनी चरम पर था, उस वक़्त वहाँ ऐसे लोग भी थे जो मुसलमान तो नहीं थे लेकिन इनसानी बुनियादों पर ज़ुल्म के मुख़ालिफ़ और मज़लूमों के हमदर्द थे। इसलिए वे मज़लूम मुसलमानों की मदद और हिफ़ाज़त के लिए आगे-आगे रहते थे। आप सोचें कि जब हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) ने मुसलमान होने का एलान किया और मक्का के लोग उनपर टूट पड़े तो हज़रत अब्बास (रज़ि॰) उनके ऊपर जाकर लेट गए और उन्हें बचा लिया, हालाँकि उस वक़्त वे मुसलमान नहीं हुए थे।

जब क़ुरैश ने मुसलमानों का समाजी बायकॉट (बहिष्कार) किया और वे

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथ अबू-तालिब की घाटी में क़ैद कर दिए गए तो इस बहिष्कार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानेवाले लोग मुसलमान नहीं थे, मगर इनसानी बुनियादों पर इस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ उठे थे।

क़बीला बनू-ख़ुज़ाआ के लोग जब मुसलमान नहीं हुए थे, उस वक़्त वे अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथ भलाई और हमदर्दी का सच्चे दिल से ताल्लुक़ रखते थे। उसकी एक मिसाल यह है कि जब उक़बा की बेटी उम्मे-कुलसूम (रज़ि॰) छिपकर हिजरत के लिए अकेली मक्का से मदीना के लिए निकलीं तो रास्ते में इस क़बीले का एक आदमी मिला। उसने पूछा, "कहाँ जा रही हो?" उन्होंने बताया कि मैं अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास मदीना जाना चाहती हूँ, लेकिन मुझे रास्ता नहीं मालूम है। उसने कहा, "मैं आपको मदीना पहुँचा दूँगा।" वह एक ऊँट लेकर आया, उन्हें बिठाया और उन्हें मदीना पहुँचा दिया। हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि॰) कहती हैं कि वह बेहतरीन साथी था, अल्लाह उसे अच्छा बदला दे।

कहने का मतलब यह है कि हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अगर कहीं मुसलमान तादाद में कम हैं तो ज़रूरी नहीं कि वहाँ रहनेवाले ग़ैर-मुस्लिम पूरे-के-पूरे इस्लाम के मुख़ालिफ़ (विरोधी) हों, और यह भी ज़रूरी नहीं कि इस्लाम की मुख़ालफ़त (विरोध) करनेवाले लोग दुश्मनी की हद तक पहुँचे हुए हों।

इनसानी आबादी में हमेशा ऐसे लोगों की बड़ी तादाद मौजूद होती है जो इनसानियत को पसन्द करती है, अगर किसी जगह मुसलमान तादाद में कम हों, कमज़ोर हों और ज़ुल्म का निशाना बन रहे हों तो उनकी हिफ़ाज़त के लिए ऐसे लोगों को तलाश करना चाहिए जो इनसानियत को पसन्द करते हों, उनकी क़द्र करनी चाहिए और उनका हौसला बढ़ाना चाहिए। उनकी बहुत-सी कमियों और कमज़ोरियों को अनदेखा करना चाहिए। उनकी कोशिशों को चाहे वे कितनी ही कम हों, क़बूल करना चाहिए। ज़रूरी नहीं कि जो आदमी अपने-आपको इनसानियत-पसन्द कहता हो वह हर मौक़े पर आपके साथ खड़ा नज़र आए। अगर वह कभी आपके ख़िलाफ़ और कभी आपके साथ खड़ा हो, तो भी उसके कभी-कभी साथ खड़े होने को सराहना चाहिए।

## नए मौक़े तलाश करते रहें

मुसलमान एक बड़ा मक़सद रखते हैं। उनकी हैसियत हक़ की तरफ़ बुलानेवाले गरोह की है। उनका मक़ाम व मिशन सिर्फ़ मिल-जुलकर रहना नहीं है, बल्कि वे साथ ही अपने दीन की तरफ़ बुलानेवाले भी होते हैं। वे अम्न-पसन्द होते हुए भी बातिल (झूठ) से मुक़ाबला करते हैं। ज़ुल्म, बेहयाई, करप्शन, गुनाह और कुफ़्र व शिर्क के ख़िलाफ़ उनकी अंथक कोशिश जारी रहती है।

मुसलमानों के लिए किसी घेटो (Ghetto) में सिमट जाना जाइज़ नहीं और न उसे शोभा देता है। अपने पैग़ाम को फैलाने के लिए नए-नए रास्ते और मैदान तलाश करना उसके मिशन का हिस्सा है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मक्का में रहते हुए अपने पैग़ाम को सिर्फ़ मक्कावालों के लिए ख़ास नहीं किया था। नबी (सल्ल॰) के हुक्म से कुछ लोग हबशा में पहुँचे तो उन्होंने वहाँ दीन की दावत का काम किया।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ताइफ़ गए और वहाँ क़बीलों के सरदारों के सामने अपना पैग़ाम रखा।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) हज के महीनों में अरब के बड़े क़बीलों के सरदारों से मुलाक़ात करते। इसी तरह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) मक्का से गुज़रनेवाले क़ाफ़िलों से मुलाक़ात करते।

किसी क़बीले का कोई आदमी मुसलमान होता तो उसे इस्लाम का दाई (प्रचारक) बनाकर उसके क़बीले में भेजा जाता।

नए-नए मैदानों की बराबर कई सालों की तलाश के बाद मदीना का नया मैदान मिला, जो पूरी दुनिया में इस्लाम के फैलने के लिए मर्कज़ी (केंद्रीय) प्लेटफ़ार्म बना।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की सीरत के इस पहलू में दुनिया के कोने-कोने में फैले हुए कमज़ोर मुसलमानों के लिए कोशिश व मेहनत का बड़ा सबक़ है।

## कमज़ोरों की ताक़त बनें

जब कोई गरोह ज़ुल्म का निशाना बनता है तो उसमें कमज़ोर लोग उसका ज़्यादा शिकार होते हैं। प्रभावशाली और ताक़तवर लोग किसी हद तक अपनी हिफ़ाज़त कर लेते हैं। मक्का में सबसे कमज़ोर और लाचार तबक़ा (वर्ग) ग़ुलामों और दासियों का था। जब मुसलमानों पर ज़ुल्म के पहाड़ तोड़े जा रहे थे तो उसका सबसे ज़्यादा निशाना वे ग़ुलाम और दासियाँ थे जिनके मालिक इस्लाम की दुश्मनी में हद से बढ़े हुए थे, लेकिन वे सब ख़तरों से बेपरवाह होकर बड़ी हिम्मत व मज़बूती के साथ मुसलमान हो गए थे। उनपर होनेवाले ज़ुल्म की दास्तानें पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दिल ख़ून के आँसू रोता है। हज़रत बिलाल हबशी (रज़ि॰), हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) और हज़रत यासिर (रज़ि॰) के ख़ानदान पर होनेवाले ज़ुल्म की दास्तानें हम सब जानते हैं। यह ज़ुल्म कुछ लोगों तक ही महदूद (सीमित) नहीं था, बल्कि बहुत-से लोग ज़ुल्म की चक्की में पिसे जा रहे थे।

ऐसे हालात में मालदार और असरदार मुसलमानों ने आगे बढ़कर उन्हें ज़ुल्म की चक्की से बाहर निकालने और हिफ़ाज़त देने का इन्तिज़ाम किया। इसी लिए हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने ऐसे बहुत-से सताए हुए ग़ुलामों और दासियों को ख़रीदकर आज़ाद किया और अपनी हिफ़ाज़त में लिया।

ज़ुल्म से बचाव और हिफ़ाज़त करने के मशहूर तरीक़े हर ज़माने में अलग-अलग हो सकते हैं। उस ज़माने में क़बीलों से जुड़े हुए लोग अपने क़बीलों की मदद से महफ़ूज़ रहते थे, ग़ुलाम को ख़रीदने और आज़ाद करनेवाला एक तरह से उसका मुहाफ़िज़ माना जाता था। आज के दौर में वह ज़्यादा महफ़ूज़ (सुरक्षित) होता है जिसे क़ानूनी और सियासी हिमायत और मदद हासिल हो। ग़रीबों और कमज़ोरों को यह हिमायत और मदद आमतौर से हासिल नहीं हो पाती है। ऐसे में उन लोगों की ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है जो ज़ुल्म का निशाना बननेवाले ग़रीबों के लिए सियासी और क़ानूनी हिमायत और मदद का इन्तिज़ाम कर सकें। अगर किसी अल्पसंख्यक समाज के अधिकतर लोग सियासी समझ-बूझ रखते हों, उन्हें अपने क़ानूनी अधिकारों की जानकारी हो, तो उन्हें नुक़सान पहुँचाना मुश्किल हो जाता है।

## मज़लूमों की मदद के लिए आगे बढ़ें

नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी का मक्की दौर कितना ज़बरदस्त था कि मुसलमान ख़ुद ज़ुल्म का शिकार थे, इसके बावजूद दूसरे मज़लूमों की मदद के लिए बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे।

नबी (सल्ल॰) की सीरत में एक क़िस्सा मिलता है कि अराश क़बीले के एक आदमी की रक़म अबू-जह्ल ने दबा रखी थी। वह आदमी मक्का के प्रभावशाली लोगों से मिला, मगर किसी ने उसकी फ़रियाद नहीं सुनी। वह काबा में मौजूद क़ुरैश के कुछ सरदारों के पास गया, उन्होंने मज़ाक़ करते हुए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास भेज दिया। उसने नबी (सल्ल॰) के सामने अपनी पूरी बात रखी और मदद माँगी। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) उसके साथ अबू-जह्ल के घर गए और दरवाज़ा खटखटाया। उसने अन्दर से पूछा, "कौन?" "पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा, "मैं मुहम्मद हूँ, बाहर निकलो।" वह बाहर आ गया, उसका चेहरा पीला पड़ गया था। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा, "इस आदमी का बक़ाया इसे अदा करो।" उसने कहा, "बस अभी देता हूँ।" वह तुरन्त अन्दर गया और उसकी रक़म लाकर दे दी।

अरब में लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ दिया जाता था। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने क़ुरआन की वे आयतें लोगों को पढ़कर सुनाईं जिनमें ऐसा करनेवालों को सख़्त सज़ा की धमकी सुनाई गई थी।

चाहे ज़ुल्म के क़िस्से हों या ज़ुल्मवाली रस्म व रिवाज हों, नबी (सल्ल॰) ने सबके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई और कार्यवाही भी की।

## ख़ामोशी को अपनाएँ, इश्तिहारबाज़ी (प्रचार) से बचें

मुख़ालफ़त और दुश्मनी के माहौल में अगर कमज़ोर गरोह ताक़तवर गरोह के सामने अपनी कोशिशों और उनके नतीजों का एलान और प्रचार करने लगे तो यह काम हिम्मत और बहादुरी का नहीं, बल्कि सूझबूझ की कमी कहलाएगा। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने जब मक्का में दीन का पैग़ाम फैलाना शुरू किया तो इस बात का बड़ा ध्यान रखा कि काम ज़्यादा-से-ज़्यादा हो, लेकिन उसका एलान और प्रचार बिलकुल न हो।

इस्लाम के शुरुआती दौर में एक दिन हज़रत अली (रज़ि॰) ने देखा कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) एक साथ नमाज़ पढ़ रहे हैं। उन्हें यह देखकर ताज्जुब हुआ और उन्होंने नबी (सल्ल॰) से इस बारे में पूछा। नबी (सल्ल॰) ने उन्हें इस्लाम के बारे में बताया। अगले दिन तक उन्हें इत्मीनान हो गया और वे इस्लाम में दाख़िल हो गए। नबी (सल्ल॰) ने उन्हें अपने मुसलमान होने को छुपाने के लिए कहा। इसी तरह से बहुत-से लोग इस्लाम में दाख़िल होते रहे और अपने क़रीबी लोगों में इस्लाम का प्रचार भी करते रहे, लेकिन कोशिश यही रही कि इस्लाम क़बूल करने की चर्चा न हो। शुरुआत में ख़ामोशी का इतना ध्यान रखा गया कि इस्लाम में नए-नए दाख़िल होनेवालों को भी एक-दूसरे के बारे में पता नहीं होता था। इसी लिए कुछ लोग यह समझते रहे कि तीसरे और चौथे नम्बर पर इस्लाम में दाख़िल होनेवाले वे हैं।

हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) को अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हिदायत दी कि "मक्का में किसी को अपने मुसलमान होने के बारे में न बताओ, मुझे डर है कि वे तुम्हें क़त्ल कर देंगे।"

जब मदीना में इस्लामी हुकूमत क़ायम हो गई तब भी मक्का और दूसरे क़बीलों में इस्लाम में दाख़िल होनेवाले लोगों की रणनीति यही थी कि वे अपने मुसलमान होने की चर्चा न करें, बल्कि ख़ामोशी से दीन का काम करते रहें।

## टकराव से बचें

अल्लाह की तरफ़ से मुसलमानों को सख़्ती के साथ यह कहा गया था कि शिर्क करनेवाले लोगों और उनके बुतों को बुरा-भला न कहा जाए। इस बात का भी सख़्ती से हुक्म था कि दीन का पैग़ाम तो पहुँचाएँ लेकिन बहस न करें। लम्बे समय तक अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने इसका भी एहतिमाम किया कि जमाअत के साथ नमाज़ें काबा में पढ़ने के बजाए छिपकर पढ़ीं। इन सब एहतियातों की वजह बुज़दिली नहीं थी, बल्कि इसकी वजह नबी (सल्ल॰) की यह ख़ाहिश थी कि टकराव न होने पाए। टकराव की हालत दीन की दावत (प्रचार) के लिए माहौल अच्छा नहीं रहने देती।

इस्लामी दावत की ख़ूबी यह है कि जिस क़ौम को दावत दी जा रही हो उसके साथ दावत देनेवाले का बरताव व रवैया सब्र व बर्दाश्त का होता है, वह दावत के लिए बहुत संजीदा रहता है। वह दूसरों के साथ टकराव से बचता है और उन तक अपना पैग़ाम पहुँचाने की हर वक़्त कोशिश करता रहता है। लेकिन जहाँ ज़्यादती बढ़ जाए और बचने का कोई चारा न रहे तो कभी सख़्त जवाब देना भी ज़रूरी हो जाता है। मक्का में पेश आनेवाले एक वाक़िए से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। सीरत (जीवनी) लिखनेवाले इब्ने-इसहाक़ (रह॰) लिखते हैं, "अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथी (रज़ि॰) को जब नमाज़ पढ़नी होती तो घाटियों की तरफ़ निकल जाते और लोगों से छिपकर वहाँ नमाज़ पढ़ते। एक बार हज़रत साद-बिन-अबी वक़्क़ास (रज़ि॰) अपने साथियों के साथ एक घाटी में जाकर नमाज़ पढ़ रहे थे कि मुशरिकीन की एक टोली उधर आ निकली। वे लोग मुसलमानों को देखकर बुरा-भला कहने लगे और गाली देने लगे, फिर हाथापाई की नौबत आ गई। जब उनकी बदतमीज़ी हद से बढ़ गई तो हज़रत साद (रज़ि॰) ने ऊँट की एक हड्डी उठाई और उनमें से एक आदमी के सिर पर मार दी। उसकी हालत देखकर सब भाग खड़े हुए।

## माहौल को पुरअम्न (शान्तिमय) बनाए रखें

जब मक्का में इस्लाम-दुश्मनों की शरारतें और ज़ुल्म बहुत बढ़ गया तो हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) और उनके साथी नबी (सल्ल॰) के पास आए और कहा, "ऐ अल्लाह के नबी! जब हम मुशरिक थे तो ताक़तवर थे, लेकिन जब मुसलमान हो गए तो दबाए जा रहे हैं और बेइज़्ज़त किए जा रहे हैं।" अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा, "मुझे अन्देखा करने का हुक्म दिया गया है, इसलिए इन लोगों से न लड़ो।" मक्का के लोगों का ज़ुल्म मुसलमानों पर हद से ज़्यादा बढ़ा हुआ था। मुसलमानों में कुछ लोग बहुत ताक़तवर थे, लेकिन फिर भी उन्हें हथियार उठाने से मना किया गया। सवाल पैदा होता है कि आख़िर मक्का में लड़ाई से रोकने की हिकमत क्या थी? इसकी बहुत-सी हिकमतें बताई गई हैं और वे सब मुनासिब और फ़ायदेमन्द हैं। उनमें से एक हिकमत यह है कि वह शहर जिसे दावते-इस्लामी और अल्लाह के पैग़ाम का मैदान बनना चाहिए, उसे आपसी लड़ाई-झगड़े और ख़ानाजंगी का मैदान नहीं बनना चाहिए।

इसमें कोई शक नहीं कि ख़ानाजंगी (गृहयुद्ध) के नतीजे बहुत बुरे होते हैं। उसका नुक़सान सभी शहरियों को उठाना पड़ता है। जब कोई बस्ती ख़ानाजंगी के दलदल में फँस जाती है तो सालों तक उससे बाहर नहीं निकल पाती। ख़ानाजंगी की हालत में सभी तामीरी काम रुक जाते हैं और दावती मिशन ठप पड़ जाता है।

## कमज़ोरों का इस्तिक़बाल करें, असर और पहुँच रखनेवालों को तलाश करें

इस्लाम समाज को हर प्रकार के अत्याचार और अन्याय से मुक्त रखने की शिक्षा देता है। इसी लिए सच्चे इस्लामी समाज में कमज़ोरों और सताए हुए लोगों के लिए बड़ा आकर्षण (कशिश) है। ऐसे लोगों के लिए मुस्लिम समाज का दरवाज़ा खुला रहना चाहिए। कमज़ोरों और दबे-कुचले लोगों का दिल से स्वागत होना चाहिए और उन्हें इज़्ज़त व एहतिराम के साथ रहने का मौक़ा देना चाहिए। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने जब मक्का में इस्लाम का पैग़ाम पहुँचाना शुरू किया तो वहाँ के दबे-कुचले ग़ुलामों और दासियों ने आगे बढ़कर उस पैग़ाम को क़बूल किया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) और उनके साथियों ने उन्हें ख़रीदकर आज़ाद किया और उन्हें समाज में ऊँचा मक़ाम दिया।

दूसरी तरफ़ अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की दावत का ख़ास ध्यान क़ुरैश और अरब के क़बीलों के सरदारों की तरफ़ था। वे क़ुरैश के सरदारों से मिलते और रास्ता रोक-रोककर उन्हें अल्लाह का पैग़ाम सुनाते।

हज के महीनों में नबी (सल्ल॰) अलग-अलग क़बीलों के सरदारों से मिलते और उनके सामने इस्लाम का पैग़ाम पेश करते।

समाज में मौजूद ताक़तवर और बा-असर लोगों तक पहुँचना और उन तक इस्लाम की दावत पहुँचाना सीरत का एक बड़ा सबक़ है। इसका फ़ायदा यह होता है कि इस्लाम का रास्ता उनके सामने रौशन हो जाता है। इस्लाम का सही परिचय उन तक पहुँचता है, मुख़ालिफ़ प्रोपेगंडे का ज़ोर टूटता है, नफ़रत कम होती है और दिल नरम होते हैं।

हबशा के बादशाह नजाशी के सामने मुसलमानों ने इस्लाम का बेहतरीन परिचय पेश किया। नजाशी उस वक़्त मुसलमान नहीं हुआ, लेकिन उसके दिल में इस्लाम की क़द्र और मुसलमानों से हमदर्दी तुरन्त पैदा हो गई। क़ुरैश के नुमाइन्दों ने नजाशी के सामने इस्लाम और मुसलमानों की जो ग़लत तस्वीर पेश की, हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) की तक़रीर ने उसके बुरे असर को दूर कर दिया और पूरे दरबार के सामने इस्लाम की सही और ख़ूबसूरत तस्वीर पेश कर दी।

## किसी को हमेशा का दुश्मन न समझें

मक्का के मुश्किल हालात में, जबकि इस्लाम के दुश्मनों की दुश्मनी हद से बढ़ी हुई थी, अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने अपने-आपको किसी का दुश्मन नहीं बनाया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने किसी से बायकॉट का एलान नहीं किया और किसी से बातचीत का दरवाज़ा बन्द नहीं किया। सख़्त-से-सख़्त दुश्मनों से नबी (सल्ल॰) मिलते, उनके सामने अपना पैग़ाम रखते और उनके सवालों का जवाब देते। ऐसा करने से बेहतरीन नतीजे सामने आए।

उमर-बिन-ख़त्ताब मक्का के बहुत बहादुर और इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे। उमर-बिन-ख़त्ताब की एक दासी (नौकरानी) मुसलमान हो गई थी। उमर-बिन-ख़त्ताब उसे चमड़े के कोड़े से बहुत मारते थे और जब मारते-मारते थक जाते तो कहते मुझे तुझपर तरस नहीं आया है, बल्कि मैं मारते-मारते थक गया हूँ इसलिए रुका हूँ। उमर-बिन-ख़त्ताब बनी-अदी के क़बीले से थे। उनके क़बीले का कोई आदमी मुसलमान बनता तो उमर-बिन-ख़त्ताब उसपर बहुत ज़ुल्म करते। उमर-बिन-ख़त्ताब की सख़्त दुश्मनी के बावजूद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उन्हें कभी हमेशा का दुश्मन नहीं समझा और उनके सीधे रास्ते पर आने की दुआ की। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की दुआ और दावत की वजह से एक दिन उमर-बिन-ख़त्ताब मुसलमान बन गए। (अल्लाह उनसे राज़ी हो) अगर कोई हज़रत उमर (रज़ि॰) की इस्लाम से पहलेवाली ज़िन्दगी और इस्लाम के बादवाली ज़िन्दगी का मुक़ाबला करेगा तो उसे यक़ीन नहीं होगा कि इतना बड़ा दुश्मन ऐसा जान निछावर करनेवाला दोस्त बन सकता है।

इस्लाम किसी इनसान को हमेशा का दुश्मन नहीं बताता। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की सीरत का बड़ा अहम सबक़ यह है कि मुसलमान किसी को हमेशा का दुश्मन न समझें। क़ुरआन यह सिखाता है कि बड़े-से-बड़े दुश्मन का दोस्त बनना मुमकिन होता है। दुश्मनी को दोस्ती में बदलने को मुमकिन बनाने में सबसे बड़ा रोल मुसलमानों के अपने रवैये का है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की सीरत हमें मुसबत (सकारात्मक) रवैया सिखाती है। लोगों को दोस्तों और दुमश्नों में बाँटना सियासी पार्टियों के लिए फ़ायदेमन्द हो सकता है, आपसी समाजी गरोहों की खींच-तान में लगे रहनेवालों के काम आ सकता है, लेकिन मुसलमानों के लिए लोगों को इस तरह दोस्ती और दुश्मनी में बाँटने की गुंजाइश नहीं है। मुसलमानों के लिए लोगों में दो तरह के लोग होते हैं, एक वे होते हैं जो मुसलमानों के दोस्त बन चुके हैं या फिर वे होते हैं जिनका दोस्त बनना मुमकिन होता है, चाहे वे कितने ही बड़े दुश्मन हों।

## अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को गाली देनेवाला जब नबी का मुहाफ़िज़ बन गया

अब्दुल-मुत्तलिब के कई बेटे थे। एक बेटे का नाम हारिस था। हारिस का एक बेटा मुग़ीरा था। अब्दुल-मुत्तलिब के एक-दूसरे बेटे का नाम अब्दुल्लाह था। अब्दुल्लाह के बेटे अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) थे। मुग़ीरा और मुहम्मद (सल्ल॰) दोनों की उम्र एक जैसी थी। दोनों को हलीमा दाई ने दूध पिलाया था। दोनों चचेरे भाईयों में दोस्ती भी थी। ख़ास बात यह थी कि दोनों दिखने में बिलकुल एक जैसे लगते थे।

मुग़ीरा अबू-सुफ़यान के नाम से मशहूर हुआ। एक अबू-सुफ़यान-बिन-हरब वे थे जो उहद की लड़ाई में मक्का के लोगों की तरफ़ से कमांडर थे और मक्का में बाद में मुसलमान हुए, लेकिन यह अबू-सुफ़यान-बिन-हारिस नबी (सल्ल॰) के चचेरे भाई थे। जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अल्लाह की ओर से रसूल बनाया गया तो यह नबी का चचेरा भाई नबी का बड़ा दुश्मन बन गया। नबी के बारे में बुरा-भला कहता और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथियों को परेशान करता और उनपर झूठी तोहमत लगाता। जब-जब क़ुरैश क़बीले

के लोग मदीना शहर पर चढ़ाई करने जाते तो अबू-सुफ़यान ज़रूर जाता। वह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की दुश्मनी में बीस साल रहा। एक दिन मक्का में यह ख़बर फैली कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) एक बड़ी फ़ौज के साथ मक्का पर चढ़ाई करने के लिए निकल गए हैं। मक्का में यह ख़बर फैलने की वजह से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के कट्टर और बड़े मुजरिमों को यह यक़ीन था कि उनको सज़ा-ए-मौत मिलकर रहेगी। इन मुजरिमों में से हर एक भागने के बारे में सोच रहा था।

अबू-सुफ़यान-बिन-हारिस भागकर अपने घर आया और अपने बीवी-बच्चों को साथ लेकर मक्का से निकलकर उस रास्ते से चला जिधर से मुसलमान आ रहे थे। जब अबू-सुफ़यान 'अबवा' तक पहुँचा तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) भी 'अबवा' तक पहुँच चुके थे। अबू-सुफ़यान ने अपना भेस बदलकर अपने बेटे के साथ नबी के पास आया और वहाँ पहुँचकर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के दरवाज़े पर अन्दर आने की इजाज़त मांगी। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की बीवी हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से कहा : अल्लाह के नबी! आपके चचेरे भाई आए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : यह मेरा चचेरा भाई है, जिसने मेरी इज़्ज़त पर हमले किए, मुझे बदनाम किया, मुझे इससे बात नहीं करनी है। जब यह बात अबू-सुफ़यान को पता चली तो उसने कहा :

अल्लाह की क़सम! अल्लाह के नबी मुझे अपने से मिलने की इजाज़त दें, वरना मैं अपने इस बेटे का हाथ पकड़कर जंगल में चला जाऊँगा और कहीं भूख-प्यास से तड़पकर मर जाऊँगा। जब यह बात अल्लाह के नबी (सल्ल॰) तक पहुँची तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को उनपर रहम आया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उन्हें अपने से मिलने की इजाज़त दी, वे अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से मिले और मुसलमान बन गए।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से कहा : अपने चचेरे भाई को वुज़ू और नमाज़ का तरीक़ा सिखाओ, फिर मेरे पास लाओ। अबू-सुफ़यान वुज़ू करके आए और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथ नमाज़ पढ़ी। फिर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से कहा और उन्होंने

लोगों में एलान कर दिया कि लोगो सुनो! अल्लाह और उसके नबी (सल्ल॰) अबू-सुफ़यान से राज़ी हो गए हैं सुनो! तुम लोग भी राज़ी हो जाओ।

अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) की जान बची और इस्लाम की नेमत मिली, लेकिन उनका दिल कुछ और माँगता था और वे उसके लिए बेचैन थे। मक्का की फ़त्ह के बाद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) 'ताइफ़' गए तो 'हुनैन' में दुश्मन ने हमला कर दिया। मुसलमानों के पाँव उखड़ गए और मुसलमानों की फ़ौज में भगदड़ मच गई। उसी समय अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) अपने घोड़े से कूदे और तलवार खींचकर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के सामने खड़े हो गए। अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) चाहते थे कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की हिफ़ाज़त करते हुए मर जाएँ। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) उनकी बहादुरी देखकर ताज्जुब कर रहे थे, लेकिन यह नहीं देख पा रहे थे कि यह कौन हैं? जब धूल साफ़ हुई तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने पूछा : यह कौन है जो इतनी बहादुरी से मेरे आगे डटा रहा? हज़रत अब्बास (रज़ि॰) ने कहा : अल्लाह के नबी, यह आपका भाई अबू-सुफ़यान-बिन-हारिस है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) आप इनसे ख़ुश हो जाइए। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : मैं इससे ख़ुश हो चुका हूँ और अल्लाह ने उसकी सारी दुश्मनी माफ़ कर दी जो उसने मुझ से की थी। फिर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) से बड़े प्यार से कहा : मेरे भाई अबू-सुफ़यान की ख़ाहिश पूरी हो गई। यह सुनकर अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का घोड़े की रिकाब में रखे हुए पैर को चूम लिया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) की बहादुरी और जान निछावर करने से ख़ुश होकर कहा : अबू-सुफ़यान मेरे भाई और मेरे ख़ानदान के एक अच्छे आदमी हैं। अल्लाह ने मेरे चाचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) की शहादत के बाद उनकी जगह अबू-सुफ़यान-बिन-हारिस को दी है। उसके बाद अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) को ख़ुदा का शेर कहा जाने लगा, हाँ! उन्हीं अबू-सुफ़यान को जो बीस साल तक सबसे बड़े नबी के दुश्मन बने रहे।

अबू-सुफ़यान जब तक ग़लत रास्ते पर थे इस्लाम के सबसे बड़े दुश्मन बने रहे, लेकिन जब सीधे रास्ते पर आए तो तरक़्क़ी करते चले गए। यहाँ तक कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : अबू-सुफ़यान-बिन-हारिस (रज़ि॰)

जन्नत के जवानों के सरदार हैं।

अबू-सुफ़यान (रज़ि॰) ने अपनी मौत से कुछ पहले अपने घरवालों से कहा : मेरे मरने के बाद मेरे लिए रोना मत, मैं जबसे सीधे रास्ते पर आया हूँ जबसे मैंने कोई गुनाह नहीं किया है।

यह दीन का कमाल था कि जो आदमी बीस साल तक अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का दुश्मन रहा, वह मुसलमान होने के बाद ख़ुदा और नबी का शेर और जन्नत का सरदार बना।

यह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का ही अच्छा सुलूक और व्यवहार था कि अपने सबसे बड़े दुश्मन को माफ़ करके अपना भाई बना लिया। मुसलमानों और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से मुहब्बत करनेवालों के लिए इसमें बड़ा पैग़ाम है।

## "इस्लाम का दुश्मन, इस्लाम की ओर बुलानेवाला बन गया"

हज़रत उरवा-बिन-ज़ुबैर (रज़ि॰) बताते हैं कि उमैर-बिन-वहब (रज़ि॰) क़ुरैश क़बीले की ओर से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का बड़ा दुश्मन था। वह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को परेशान करने में आगे-आगे रहता था और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथियों को तकलीफ़ पहुँचाता था। उमैर मक्का के बहादुरों में से एक था। वह एक लड़ाकू इनसान था। उसकी बहादुरी की कहानियाँ मशहूर थीं। उमैर का दोस्त सफ़वान-बिन-उमय्या था। सफ़वान का बाप उमय्या इस्लाम का कट्टर दुश्मन था। सफ़वान भी इस्लाम की दुश्मनी में आगे-आगे रहता था। उमैर लड़ाकू बहादुर था और सफ़वान बहुत मालदार था। एक ने अपनी ताक़त और दूसरे ने अपनी दौलत इस्लाम के ख़िलाफ़ लगा रखी थी।

जब मुसलमान मक्का छोड़कर मदीना आ गए, तब भी उमैर-बिन-वहब इस्लाम का दुश्मन ही रहा। बद्र की लड़ाई में उमैर अपने बेटे के साथ आया। जबकि सफ़वान इस लड़ाई में नहीं आया, लेकिन सफ़वान का बाप और भाई दोनों बद्र की लड़ाई में आए।

जब बद्र की लड़ाई के लिए फ़ौज ने पड़ाव डाला तो उमैर-बिन-वहब को मुसलमानों की फ़ौज को देखने के लिए भेजा गया, ताकि अन्दाज़ा हो सके कि मुसलमानों की फ़ौज में कितने आदमी हैं? उमैर-बिन-वहब ने वापस जाकर अपने कमांडर को बताया कि मुसलमान तीन सौ से कुछ कम या ज़्यादा हैं,

फिर उसने कहा कि रुको मैं एक बार और देखकर आता हूँ कभी फ़ौज की टुकड़ी पीछे आ रही हो। उमैर ने अपने घोड़े से दूर तक जाकर देखा, लेकिन कुछ नहीं पाया। वह वापिस लौटा और अपनी फ़ौज से कहाः मैंने कुछ नहीं पाया है, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मुसलमान लड़ाई के लिए अपनी पूरी तैयारी के साथ आ रहे हैं। ख़ुदा की क़सम! मुझे लगता है कि उनका एक आदमी हमारे एक आदमी को ज़रूर मार देगा चाहे बाद में ख़ुद मर जाए। अगर हमारे इतने ज़्यादा लोग मार दिए जाएँगे तो फिर ज़िन्दगी का मज़ा ख़राब हो जाएगा, आप लोग अच्छी तरह सोच लो।

जंग के मैदान में जब दोनों फ़ौजें आमने-सामने हुईं तो उमैर ने जंग का एलान किया और सबसे पहले वह ख़ुद आगे बढ़ा। इस जंग में इस्लाम के दुश्मनों की हार हुई। मक्का के बहुत से सरदार मारे गए उमैर भी बहुत ज़ख़्मी हुआ, लेकिन वह भाग निकला और उसका बेटा पकड़ा गया और क़ैदी बनाया गया। मक्का में कोहराम मच गया। इस जंग में लोगों की चोटें इतनी गहरी थीं कि वे चोटें सही नहीं हो रही थीं। हर दिन किसी की याद आ जाती और ग़ुस्सा बढ़ जाता। उमैर-बिन-वहब को बहुत गहरा ज़ख़्म लगा था, तलवार उसके पेट में घुसकर कमर से निकल गई थी। उसकी यह गहरी चोट भी सही हो गई, लेकिन दिल में बदले की आग भड़क रही थी। उसका दोस्त सफ़वान-बिन-उमय्या भी दुश्मनी में जल रहा था, क्योंकि उसका बाप और भाई जंग में मार दिए गए थे। एक दिन दोनों साथ बैठे हुए थे। सफ़वान ने कहा : बद्र की लड़ाई में अपने लोगों के मरने की वजह से ज़िन्दगी में मज़ा नहीं है। उमैर ने कहा : तुम सही कह रहे हो, लेकिन मेरी परेशानी यह है कि मुझपर लोगों का क़र्ज़ है और बच्चों का ख़र्च भी बहुत ज़्यादा है, मेरे बाद उनका कोई ध्यान रखनेवाला नहीं है। अगर यह परेशानियाँ न होतीं तो मैं तो जाकर मुहम्मद का क़त्ल कर देता। मेरे पास वहाँ तक जाने का बहाना भी है कि मेरा बेटा अभी तक उनकी क़ैद में है। मैं वहाँ जाकर कहता कि अपने बेटे को छुड़ाने के लिए आया हूँ। सफ़वान ने पूछा : लेकिन तुम सब लोगों के बीच मुहम्मद पर कैसे हमला कर सकोगे? उमैर ने कहा : तुम मेरी हिम्मत व बहादुरी को जानते ही हो। ख़तरों का मैं खिलाड़ी हूँ और मेरी तेज़ी का भी

तुम्हें पता है। मुहम्मद पर हमला करूँगा और वहाँ से तीर की तरह भागकर पहाड़ों में चला जाऊँगा, किसी को भी पता नहीं चलेगा। यह सब सुनकर सफ़वान को लगा कि उसका इरादा सही है और उसका ख़्वाब पूरा हो जाएगा। उसने उमैर की बात सुनकर ख़ुशी से कहा : दोस्त तुम किसी बात की चिंता मत करो। तुम्हारा सारा क़र्ज़ मैं दूँगा और तुम्हारे बच्चों-घरवालों का भी पूरा ध्यान रखूँगा। जितना ख़र्च मैं अपने घरवालों पर करूँगा उतना ही ख़र्च तुम्हारे घरवालों पर करूँगा। सफ़वान ने उमैर के लिए सफ़र का सामान तैयार किया और एक तलवार ज़हर में बुझाकर और उसकी धार तेज़ करके उमैर को दी, ज़हर में बुझी हुई तलवार बहुत ख़तरनाक होती है। हल्का-सा ज़ख़्म भी लग जाए तो पूरे जिस्म में ज़हर फैल जाता है। सफ़वान और उमैर ने आपस में तय किया कि ये बातें उनके अलावा किसी को पता न चलें, उनके बीच में राज़ ही रहें।

उमैर मदीना पहुँचा और मस्जिदे-नबवी के दरवाज़े के सामने ऊँट को बिठा दिया। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उसको देखा। हज़रत उमर (रज़ि॰) मस्जिद के सहन में बैठे हुए थे, उनके साथ कुछ अनसारी सहाबा भी थे। बद्र की जंग के बारे में बातचीत हो रही थी और अल्लाह के एहसान पर उसका शुक्र अदा कर रहे थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उमैर के पास तलवार देखी तो हज़रत उमर (रज़ि॰) को ग़ुस्सा आ गया। और एकदम बोले : अरे यह तो वही है जिसने हमारी फ़ौज की गिनती की थी, इसी ने लोगों को भड़काया था और जंग छेड़ी थी, यह ज़रूर किसी बुरे इरादे के साथ आया है। हज़रत उमर (रज़ि॰) तेज़ी से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आए और कहा : उमैर-बिन-वहब तलवार लटकाकर मस्जिद में आया है और वह बड़ा धोकेबाज़ और बुरा आदमी है, उसपर बिलकुल भी भरोसा न कीजिएगा। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : उसे मेरे पास आने दो। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने जाकर साथियों से कहा : इसको अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास जाने दो और बिलकुल चौकन्ना रहो, इसका अच्छी तरह ध्यान रखो यह बहुत ख़तरनाक हमला करनेवाला है।

हज़रत उमर (रज़ि॰) और उमैर दोनों अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के कमरे में दाख़िल हुए। उमैर ने कहा : आपका दिन अच्छा हो। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : उमैर अल्लाह ने हमें इससे अच्छी चीज़ सिखाई है और

वह है "सलाम"। यह कहकर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उसे बता दिया कि यहाँ सलामती है। यह दीन सलामती का दीन है और इसको माननेवाले सलामती और अम्न वाले हैं। उसके बाद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने पूछा : कहो उमैर, कैसे आना हुआ? उसने कहा : मैं अपने क़ैदी को छुड़ाने आया हूँ, आप लोग तो हमारे भाई हैं, हमारा क़ैदी आपका क़ैदी है, उसे कुछ जुर्माना लेकर छोड़ दें। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : यह तुम्हारे गले में तलवार क्यों लटकी हुई है? उसने कहा : बुरा हो इस तलवार का यह तलवार जंग में काम नहीं आई, बात यह है कि जब मैं अन्दर आया तो इसे अपने सामान में रखकर आना भूल गया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : सही बताओ क्यों आए हो? उसने कहा : मैं अपने क़ैदी के बारे में ही आया हूँ। फिर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उसकी और सफ़वान की बातचीत उसको बताई और कहा : देखो मुझे पता है कि तुम मुझे क़त्ल करने के इरादे से आए हो लेकिन अल्लाह मुझे बचाएगा। यह सुनकर उमैर से कोई जवाब न बन सका औ वह सच्चाई तक पहुँच गया। उसने तुरन्त सीधा रास्ता चुनते हुए अल्लाह और उसके नबी के सच्चे होने का एलान किया और कहा कि ऐ अल्लाह के नबी (सल्ल॰)! हम आपके बारे में यह कहते थे कि आपके पास आसमान से ख़बर आती है, लेकिन यह तो हम दोनों के बीच की बात थी, जिसका आपको पता चल गया। फिर उमैर ने कहा : अल्लाह का शुक्र है जिसने मुझे इस रास्ते पर डाला और यहाँ तक ले आया। मैं अल्लाह और उसके नबी पर ईमान लाता हूँ। उमैर की यह बात सुनकर वे मुसलमान बहुत खुश हुए जिन्हें उसने परेशान किया था। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा : क़सम है उसकी जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है। उमैर जब यहाँ आया था तो उससे मुझे इतनी नफ़रत थी जितनी एक जानवर से नहीं होती, लेकिन आज वह मुझे अपने कुछ बेटों से भी ज़्यादा प्यारा है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : उमैर बैठो हम तुम्हारे प्यार व हमदर्दी के लिए कुछ करते हैं। फिर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने सहाबा से फ़रमाया : अपने भाई के साथ रहो, उसको दीन समझाओ, उसको क़ुरआन सिखाओ और उसके क़ैदी को रिहा कर दो।

कुछ ही दिनों के सीखने-सिखाने के बाद हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने कहा :

ऐ अल्लाह के नबी (सल्ल॰) मैंने अपनी सारी ताक़त अल्लाह के दीन की दुश्मनी में लगाई है। अल्लाह का शुक्र है कि उसने मुझे तबाही से बचाकर इस्लाम का तोहफ़ा दिया है। ऐ अल्लाह के नबी! मुझे इजाज़त दीजिए, कि मैं क़ुरैश के लोगों के पास जाऊँ, उन्हें अल्लाह की तरफ़ बुलाऊँ। हो सकता है कि अल्लाह उन्हें भी सीधा रास्ता दिखाकर तबाही से बचा ले। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उन्हें मक्का जाने की इजाज़त दे दी। हज़रत उमैर मक्का पहुँचे। मक्का में पहले से ही सफ़वान ने क़ुरैश के लोगों से यह कहना शुरू कर दिया था कि अभी जल्दी ही एक बड़ी ख़ुशख़बरी मिलनेवाली है, जो कि बद्र की जंग के सारे ग़म दूर कर देगी। वह उस ख़ुशख़बरी के लिए बहुत परेशान था, मदीना से आनेवाले हर आदमी से मालूम करता था कि कोई बड़ी ख़ुशख़बरी है?

लेकिन जब सफ़वान को हज़रत उमैर के मुसलमान होने की ख़बर पहुँची तो सफ़वान की सारी ख़ुशी ग़म में बदल गई और उसके ख़ाब टूट गए। सफ़वान बहुत ग़ुस्सा हुआ, उसने क़सम खाई कि वह उमैर से कभी बात नहीं करेगा और न कभी उसके काम आएगा। मक्कावालों ने भी हज़रत उमैर को बहुत बुरा-भला कहा। लेकिन हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने इन सब बातों की बिलकुल परवाह न की क्योंकि हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने एक ही बात ठानी हुई थी कि किसी तरह मक्कावालों को तबाही से बचा लूँ। मक्का में अब न तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) थे और न ही अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के सहाबा थे, अब मक्का में सिर्फ़ हज़रत उमैर (रज़ि॰) इस्लाम के प्रचारक (दाई) थे और हज़रत उमैर के मुक़ाबले में ज़्यादातर वे लोग थे जिनके रिश्तेदार बद्र की लड़ाई में मारे गए थे और ये सब अपने रिश्तेदारों के बदले के लिए ग़ुस्से में भड़के हुए थे। मक्का के ऐसे माहौल में इस्लाम के बारे में बताना और सीधे रास्ते की ओर बुलाना बहुत ही मुश्किल और कठिन काम था। सफ़वान ने तो एलान कर दिया था कि चाहे सारी दुनिया इस्लाम की तरफ़ आ जाए और उसको अपना धर्म बना ले लेकिन मैं यह नहीं करूँगा।

हज़रत उमैर-बिन-वहब दीन फैलाने का काम धुन और लगन के साथ करते रहे। अल्लाह ने हज़रत उमैर (रज़ि॰) की मेहनत के बदले में बहुत से लोगों को सीधा रास्ता दिखाया। दीन के प्रचार-प्रसार का काम तो सारे ही

सहाबा करते थे और उनके ज़रिए से भी लोग सीधे रास्ते पर आते थे, लेकिन किसी के बारे में यह सीरत की किताबों में नहीं मिलता कि बहुत से लोगों ने उसके ज़रिए से सीधा रास्ता पाया हो। हज़रत उमैर (रज़ि॰) के बारे में यह बात ख़ासकर सीरत की किताबों में मिलती है।

सफ़वान ने हज़रत उमैर (रज़ि॰) से ताल्लुक़ ख़त्म कर लिया, लेकिन हज़रत उमैर (रज़ि॰) सफ़वान के बारे में परेशान थे कि किसी तरह सफ़वान सीधे रास्ते पर आ जाए। इन्हीं सोच-विचार में थे कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) बहुत बड़ी फ़ौज के साथ सुकून के साथ मक्का में दाख़िल हुए, यह देखकर सफ़वान मक्का से भाग गया और समुद्र की ओर निकल गया। हज़रत उमैर (रज़ि॰) की परेशानी बढ़ गई। हज़रत उमैर (रज़ि॰) अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आए और कहा : अल्लाह के नबी! आपने तो आज सबको माफ़ कर दिया है। सफ़वान अपनी क़ौम का सरदार है वह आपसे डरकर समुद्र की ओर भाग गया है, मुझे डर है कि वह समुद्र में कूदकर मर न जाए, आप उसे माफ़ कर दीजिए, मैं किसी भी तरह उसे मनाकर ले आऊँगा। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : ठीक है उसे माफ़ कर दिया गया। हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने कहा : अल्लाह के नबी! आप अपनी तरफ़ से कोई निशानी दे दीजिए, जिसे मैं सफ़वान को दिखा सकूँ। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) जो पगड़ी बाँधकर मक्का में आए थे वह पगड़ी निशानी के लिए हज़रत उमैर (रज़ि॰) को दे दी।

उमैर (रज़ि॰) सफ़वान को ढूँढने के लिए निकले तो उन्होंने सफ़वान को समुद्र के पास पा लिया। सफ़वान समुद्र में डूबने ही जा रहा था कि हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने उसे पुकारा : सुनो सफ़वान! ख़ुदा के लिए सुनो, अपने- आपको तबाह मत करो यह देखो मैं अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास से माफ़ी और क्षमा की निशानी लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। सफ़वान ने कहाः तुम्हारा बुरा हो। मेरे सामने से हट जाओ, मुझसे बात मत करो, तुम बहुत झूठे आदमी हो। इससे पहले भी मुझे धोखा दे चुके हो। उमैर (रज़ि॰) ने कहा : सफ़वान समझदारी से काम लो। तुम मेरे लिए मेरे बाप से ज़्यादा प्यारे हो। देखो, मुहम्मद (सल्ल॰) सबसे अच्छे इनसान हैं, सबसे ज़्यादा धैर्य व सब्र, बड़ी हिम्मत व क्षमता और बड़े दिल-वाले हैं। बहुत माफ़ करनेवाले हैं। यह भी सोचो कि

मुहम्मद (सल्ल॰) तुम्हारे चचेरे भाई भी हैं। उनकी शान तुम्हारी शान-शौकत, उनकी इज़्ज़त व सम्मान तुम्हारी इज़्ज़त व सम्मान और उनकी हुकूमत व सरदारी तुम्हारी हुकूमत व सरदारी है। यह सुनकर सफ़वान कुछ नर्म हो गया। उसने कहा : लेकिन मुझे डर है कि वे मुझे क़त्ल कर देंगे। हज़रत उमैर (रज़ि॰) ने कहा : तुम बिलकुल न डरो। वे तुम्हारे डर से कहीं ज़्यादा बड़े दिलवाले और माफ़ करनेवाले हैं। आख़िरकार उमैर (रज़ि॰) किसी तरह सफ़वान को अपने साथ ले आए। दोनों अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के सामने खड़े हुए। सफ़वान ने कहा : उमैर कह रहा है कि आपने मुझे माफ़ कर दिया है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : हाँ, उमैर ने सच कहा है। सफ़वान ने कहा : आप मुझे दो महीने की मोहलत (छूट) दें। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : तुम्हें चार महीने की छूट है।

सफ़वान की बीवी पहले ही मुसलमान हो चुकी थी, लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने इन दोनों का निकाह ख़त्म नहीं किया। यह दावती पहलू से बहुत फ़ायदेमन्द था, क्योंकि बीवी मुसलमान होकर अपने ग़ैर-मुस्लिम शौहर पर बहुत अच्छा असर डाल सकती है। सफ़वान ने इस्लाम को अपनाने से इनकार कर दिया था, लेकिन फिर भी अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने उससे बहुत क़रीबी ताल्लुक़ रखा। सफ़वान के पास हथियार बहुत थे। 'हुनैन' की लड़ाई में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने सफ़वान से उधार हथियार माँगे तो सफ़वान ने कहा : आप ज़बरदस्ती लेना चाहते हैं या मेरी ख़ुशी और रज़ामन्दी से लेना चाहते हैं? अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : मैं किसी ज़ोर-दबाव में नहीं बल्कि तुम्हारी ख़ुशी से लेना चाहता हूँ और वापसी की शर्त के साथ। फिर सफ़वान ने 100 ज़िरहें और कुछ जंगी हथियार मुसलमानों को उधार दिए। उसके बाद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने सफ़वान की ख़ाहिश और तलब पर हुनैन की जंग में शामिल होने की इजाज़त भी दी और जंग के बाद माले-ग़नीमत में से भी सफ़वान को हिस्सा दिया।

सफ़वान की इस्लाम दुश्मनी की एक बड़ी कहानी है। सफ़वान के पास एक भी ऐसा अच्छा काम नहीं था जिसकी वजह से उसके साथ भलाई की जा सके, लेकिन फिर भी अल्लाह के नबी (सल्ल॰) यह चाहते थे कि सफ़वान

अधर्म को छोड़कर धर्म और सीधे रास्ते पर आ जाएँ, इसी लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने सिर्फ़ सफ़वान को माफ़ नहीं किया, बल्कि उनको जंग में हासिल दुश्मनों के माल में से बहुत ज़्यादा माल भी दिया। सफ़वान के लिए यह ज़िन्दगी का अनोखा तजरिबा था कि जिनके क़त्ल करने की साज़िश की थी और जिनसे मुहब्बत करनेवाले हज़रत ज़ैद-बिन-दसिना (रज़ि॰) को अपने बाप के बदले में बे-रहमी से क़त्ल कराया था आज वही आदमी सफ़वान पर एहसान के बाद एहसान कर रहा है। सफ़वान कहते हैं : अल्लाह की क़सम! जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने मुझे देना शुरू किया और एहसान करने शुरू किए तो वे मेरे लिए सबसे बुरे आदमी थे, लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की तरफ़ से मुझपर एहसान होते रहे यहाँ तक कि वे मुझे सबसे प्यारे हो गए। सफ़वान ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को क़रीब से देखा और सफ़वान अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के किरदार, व्यवहार से मुतास्सिर (प्रभावित) हुआ और आख़िरकार मुसलमान हो गया। इस्लाम के बाद भी हज़रत सफ़वान (रज़ि॰) मुसलमानों के भी ऐसे ही सरदार बने रहे जिस तरह पहले वे सरदार थे।

यह है मक्का के दो सरदारों की कहानी, जो इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे, उनके बहुत बड़े-बड़े जुर्म थे, लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के अच्छे सुलूक व व्यवहार ने उनके दिलों को जीत लिया और वे इस्लाम के कट्टर दुश्मन, इस्लाम पर जान न्योछावर करनेवाले सिपाही बन गए। सीरत के इन वाक़िओं में समझ-बूझ रखनेवालों के लिए बहुत ही क़ीमती पैग़ाम हैं।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के बारे में बद्तमीज़ी का एक बड़ा क़िस्सा हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) का है। वे कहते हैं : मैं अपनी माँ को इस्लाम की तरफ़ बुलाता। एक दिन मैं अपनी माँ को इस्लाम के बारे में समझा रहा था कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के बारे में उन्होंने ऐसी बात कही जो मुझे बहुत बुरी लगी। मैं रोता हुआ अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आया और कहा कि ऐ अल्लाह के नबी! मैं अपनी माँ को इस्लाम की ओर बुलाता वह मना कर देतीं, आज मैंने उनको समझाया तो उसने आपके बारे में ऐसी बातें कहीं हैं जो मुझे बहुत बुरी लगीं। आप अल्लाह से दुआ करें कि मेरी माँ सीधे रास्ते पर आ जाए। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने दुआ की और बाद में हज़रत अबू-हुरैरा

(रज़ि॰) की माँ मुसलमान हो गईं। (हदीस-मुस्लिम) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) की माँ ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को बुरा-भला कहा, लेकिन उन्हें इस जुर्म की सज़ा देने का ख़याल न तो हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) को आया और न ही अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने सज़ा देने को कहा।

एक क़िस्सा 'सुनन-कुबरा' किताब में लिखा है कि एक सहाबी हज़रत ग़ुरफ़ा-बिन-हारिस (रज़ि॰) के पास से एक ईसाई निकला, उन्होंने इस ईसाई को इस्लाम के बारे में समझाया। वह ईसाई अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के बारे में बुरा-भला कहने लगा। हज़रत ग़ुरफ़ा ने उसके एक घूँसा मार दिया। यह बात वहाँ के गवर्नर हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) के पास पहुँची। हज़रत अम्र ने कहा : हमने इन ईसाइयों को चैन-सुकून से रहने का वादा दिया हुआ है। हज़रत ग़ुरफ़ा ने हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) से कहा : हमारे बीच यह बात भी तो तय है कि वे (ईसाई) अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को खुलेआम बुरा-भला नहीं कहेंगे। हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) ने हज़रत ग़ुरफ़ा की बात को क़बूल किया लेकिन यहाँ भी हज़रत ग़ुरफ़ा ने सिर्फ़ घूँसे पर ही बात ख़त्म कर दी। उस ईसाई के लिए सज़ा-ए-मौत की गवर्नर से मांग नहीं की, जबकि उनको हक़ था।

अल्लामा इब्ने-जोज़ी, अल्लामा क़ुर्तुबी और दूसरे उलमा ने क़ुरआन में सूरा 'मुजादिला' की आख़िरी आयतों के बारे में दो क़िस्से लिखे हैं, उनमें बड़ी नसीहत है।

एक क़िस्सा यह है कि अब्दुल्लाह-बिन-उबई मुनाफ़िक़ों का सरदार था, जबकि उसके बेटे अब्दुल्लाह सच्चे मुसलमान थे। एक दिन हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के पास बैठे थे। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने पानी पिया। हज़रत अब्दुल्लाह ने कहा : ऐ अल्लाह के नबी! मुझे अपना बचा हुआ पानी दीजिए मैं अपने बाप को पिलाऊँगा, हो सकता है कि इस पानी से ही अल्लाह मेरे बाप के दिल को पाक कर दे। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) पानी लेकर अपने बाप के पास गए। उसने कहा : यह क्या है? हज़रत अब्दुल्लाह ने कहा : यह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का झूठा पानी है मैं आपके पास लाया हूँ ताकि आप इसे पी लें। हो सकता है कि अल्लाह इस पानी से आपके दिल को शिर्क से

पाक कर दे। यह बात सुनकर हज़रत अब्दुल्लाह का बाप बोला : तू अपनी माँ का पेशाब ले आता वह इससे ज़्यादा पाक है। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) को यह सुनकर बहुत ग़ुस्सा आया और वे अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आए और कहा : ऐ अल्लाह के नबी! मुझे इजाज़त दीजिए कि मैं अपने बाप को क़त्ल कर सकूँ। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : नहीं, बल्कि अपने बाप के साथ नरमी करो और अच्छा सुलूक करो।

दूसरा क़िस्सा यह है कि एक दिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के बाप अबू-क़हाफ़ा ने नबी (सल्ल॰) के बारे में बुरा-भला कहा, उनके बेटे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने उन्हें एक थप्पड़ मार दिया, जिसकी वजह से वे नीचे गिर गए। फिर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आए और अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को यह बात बताई। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा : तुमने यह ग़लत किया, अब ऐसा मत करना। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने कहा : अल्लाह की क़सम! अगर मेरे पास उस वक़्त तलवार होती तो मैं उन्हें क़त्ल कर देता।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को बुरा-भला कहने की वजह से दोनों सहाबियों को ग़ुस्सा आया, एक सहाबी ने अपने बाप को थप्पड़ मार दिया और दूसरे सहाबी ने बाप को क़त्ल करने की इजाज़त माँगी, लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की शान देखिए कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) से कहा : दोबारा हाथ मत उठाना। और हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) से कहा कि बाप के साथ नरमी और अच्छा सुलूक करते रहो।

मुसलमानों में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को बुरा-भला कहनेवाले और बद्तमीज़ी करनेवाले की सज़ा पर बहुत ज़ोर दिया गया उसकी दवा पर ज़ोर नहीं दिया गया। आज अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी के इस पहलू को सामने लाने की ज़रूरत है; जो कि आँखों से ओझल हो गया है। हमारे हिन्दुस्तान में ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ लिखनेवाले जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की सही सीरत और ज़िन्दगी को समझा तो उसने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की सीरत पर एक शानदार किताब लिखी। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को बुरा

कहनेवाले की सज़ा क्या है? यह तो इस्लामी हुकूमत का काम है। हिन्दुस्तान में हमें यह सोचना चाहिए कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को बुरा कहनेवाले की दवा क्या है? सीरत से हमें इसके बारे में रहनुमाई मिलती है।

## इस्लामी दावत की बुलन्दी और पाकी

इस्लामी दावत (पैग़ाम) की बहुत बड़ी ख़ूबी उसकी बुलन्दी और पाकी है। इसकी बुलन्दी, अज़मत और पाकी का सबसे बड़ा पहलू यह है कि यह अल्लाह की तरफ़ से है और उसी की तरफ़ बुलाने के लिए है। इस दावत को फ़रिश्तों के सरदार हज़रत जिबराईल (अलैहिस्सलाम) के ज़रिए से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) पर नाज़िल (अवतरित) होनेवाली किताब क़ुरआन की शक्ल में भेजा गया। इस इस्लामी दावत के पूरे इतिहास में ऐसे लोग हुए हैं जो अपने अख़लाक व किरदार और अच्छे रवैये की वजह से पूरे समाज में जाने जाते थे। इस्लामी दावत अपनी अज़मत व बुलन्दी और पाकी के साथ मुल्कों में फैलती रही—दुनियादारी और दुनिया की गन्दगी इस्लामी दावत से दूर रही—न कभी किसी को कोई लालच दिया गया और न कभी किसी को डराया गया। अल्लाह के आख़िरी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की इस्लामी दावत में यह काम करनेवालों के लिए अच्छा नमूना है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की दावत दुनियादारी से दूर थी और नबी की दावत में इनसानों की कामयाबी और अल्लाह की ख़ुशी पाना ही मक़सद था।

इस्लामी दावत की पाकी का एक रौशन पहलू यह है कि दावत देनेवाले (प्रचारक) अपनी कोशिश में कोई लोभ-लालच नहीं रखता, वह अपनी मेहनत व कोशिश का कोई बदला नहीं माँगता। इस्लाम का पैग़ाम पहुँचानेवाला हर किसी बदले और इनाम की परवाह किए बिना ही अपनी दावत देता है ऐसा करने से उसकी दावत बुलन्द होती है। इस्लाम की दावत में अपना लाभ लेने की कोई गुंजाइश नहीं। इस्लाम की दावत देनेवाले का काम सिर्फ़ लोगों की भलाई करना है। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) बाज़ारों, मुहल्लों और क़बीलों में जाकर दावत देते और लोगों से अपना किसी भी तरह का फ़ायदा नहीं माँगते थे।

इस्लामी दावत की बुलन्दी का एक और रौशन पहलू यह है कि इस्लाम की दावत देनेवाले के सामने दुनिया की कितनी ही बड़ी चीज़ रख दी जाए, लेकिन वह अपने दावत देने के काम को नहीं छोड़ सकता। अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने साफ़-साफ़ कह दिया था कि "अल्लाह की क़सम! अगर दुनियावाले मेरे सीधे हाथ में सूरज और दूसरे हाथ में चाँद रख दें कि मैं अपनी दावत देने का काम छोड़ दूँ तो मैं बिलकुल अपना काम नहीं छोड़ूँगा।" क़ुरैश के लोगों ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से कहा : अगर आप इस इस्लामी दावत के ज़रिए से माल इकट्ठा करना चाहते हों, तो हम आपके लिए माल का इतना ढेर लगा देंगे कि आप सबसे ज़्यादा मालदार हो जाएँगे। अगर आप इस दावत के ज़रिए से सरदारी चाहते हों, तो हम आपको अपना सरदार बना लेंगे, अगर आप बादशाह बनना चाहते हों तो हम आपको अपना बादशाह बना लेंगे। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने क़ुरैश के लोगों की यह सारी बातें ठुकरा दीं और इस्लामी दावत की अज़मत व बुलन्दी पर कोई आँच न आने दी।

इस्लामी दावत की पाकी का तीसरा पहलू यह है कि इस्लाम की दावत देनेवाला अपनी दावत को ताक़त पहुँचाने और उसे आगे बढ़ाने के लिए किसी भी तरह की सौदेबाज़ी या डीलिंग को क़बूल नहीं करता है।

जब मक्का के लोगों ने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को झूठलाया, परेशान किया और पाबन्दियाँ लगाईं तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) दूसरे क़बीलों के लोगों के पास अपनी दावत लेकर गए। कुछ बड़े क़बीलों के सरदारों ने नबी (सल्ल॰) के सामने यह बात रखी कि वे इस्लाम भी अपना लेंगे और जान-माल से मदद भी करेंगे लेकिन शर्त यह है कि कामयाबी मिलने के बाद उन्हें हुकूमत में हिस्सा मिले और नबी (सल्ल॰) के बाद वे बादशाह बनें। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने साफ़ कह दिया कि हुकूमत तो अल्लाह जिसे चाहेगा उसे देगा। यह ऐसे वक़्त की बात है जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को मदद और सहारे की बड़ी ज़रूरत थी। इस्लामी दावत में इस तरह सौदा करने की गुंजाइश होती तो यह सबसे कामयाब समय था। लेकिन इस्लामी दावत में सौदेबाज़ी की बिलकुल गुंजाइश ही नहीं। इसीलिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने किसी भी तरह की बुराई से अपनी दावत को दूर रखा।

एक दिन बनू-आमिर क़बीले का सरदार आमिर-बिन-तुफ़ैल मदीना आया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से बातचीत हुई। उसने कहा : ऐ मुहम्मद! अगर मैं मुसलमान हो जाऊँ तो मुझे क्या मिलेगा? अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : इस्लाम जो हक़ (एक आम आदमी को) देता है वे तुम्हें भी मिलेंगे और इस्लाम जो पाबन्दियाँ लगाता है तुम पर भी लगेंगी। उसने कहा : आप मुझे अपने बाद बादशाह बना दें। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : यह न तुम्हारे लिए है और न तुम्हारी क़ौम के लिए।

इस्लाम की दावत के यह तीन रौशन पहलू हैं कि दावत देनेवाला दुनियावालों से कोई बदला नहीं माँगता, दूसरा पहलू यह है कि वह दुनिया की वजह से अपने दावत के काम को नहीं छोड़ता और तीसरा पहलू यह है कि इस्लाम की दावत के लिए किसी भी तरह की सौदेबाज़ी नहीं करता है।

इस्लाम की दावत देनेवाला न लालच रखता है, न लालच क़बूल करता है और न लालच देता है।

इस्लाम की दावत देनेवाला न दुनिया कमाने के लिए दावत देता है, न दुनिया पाने के लिए काम छोड़ता है और न दुनिया के किसी ऑफ़र का साथ लेता है। जिसके दिमाग़ में इनसानों की कामयाबी और जिसके दिल में अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने का मक़सद बैठ जाए फिर उसको दुनिया से कोई लालच नहीं होता है।

यह हक़ीक़त और सच्चाई है कि हिन्दुस्तान में इस्लाम की दावत बुज़ुर्गों, सूफ़ियों और ईमानदार कारोबारियों से फैली, लोगों को मुसलमान बनाने के लिए मुस्लिम बादशाहों ने न तो अपनी ताक़त लगाई और न दौलत लगाई, जबकि उनकी हुकूमत ताक़तवर और उनके पास माल व दौलत बहुत ज़्यादा था।

कुछ दिनों से हमारे मुल्क में इस्लाम की दावत को बदनाम करने की कोशिश बढ़ी है। इस्लाम की दावत देनेवालों के ख़िलाफ़ प्रोपेगंडा किया जा रहा है कि वे माल का लालच देकर लोगों का मज़हब बदलवा रहे हैं। ऐसे प्रोपेगंडे का सही जवाब यह है कि इस्लामी दावत की बुलन्दी व अज़मत और पाकी को सबके सामने पेश किया जाए। और यह बताया जाए कि इस्लाम की दावत में इस तरह के प्रोपेगंडों और हथकंडों की बिलकुल गुंजाइश नहीं है।

इस्लाम की दावत के बारे में देश के सामने दो बातें अच्छी तरह से बयान करने की ज़रूरत है।

पहली बात यह है कि इस्लाम की दावत अल्लाह की दावत है, इस पैग़ाम को हर-हर इनसान तक पहुँचाने का हुक्म अल्लाह ने दिया है और यह ऑर्डर ऐसा है कि हर हालत में पूरा करना है। लोग मुख़ालिफ़ हों तब भी, लोग दुश्मन हो जाएँ जब भी और लोग मारें-पीटें और तकलीफ़ दें, परेशान करें हर हाल में दावत का काम करते रहना है। चाहे सब लोग मिलकर इस काम को रोकने की कोशिश करें।

दूसरी बात यह है कि इस्लाम की दावत इनसानों की भलाई और फ़ायदे का पैग़ाम है। इसका मक़सद लोगों की ख़ैरख़ाही-भलाई है। ग़लत रास्ते पर चलनेवाले और बुराई करनेवालों को समझाना एक अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी है। यह ज़िम्मेदारी हर हाल में पूरी करनी चाहिए। यह वक़्त दीन की दावत को छोड़ने का नहीं है, बल्कि इस्लाम की दावत की ज़िम्मेदारी पूरा करने और इस्लामी दावत का झण्डा ऊँचा करने का समय है।

## हालात बदलने की कोशिश तेज़ करें

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने मक्का में दावत की रफ़्तार को बहुत तेज़ रखा। अपनी ज़िन्दगी का एक-एक लम्हा इस मिशन में लगा दिया, सख़्त बुख़ार में भी दावत को छोड़कर आराम करना गवारा नहीं किया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के साथियों यानी सहाबा (रज़ि॰) ने भी दावत के काम को तेज़ रफ़्तारी से किया। यहाँ तक कि जो औरतें इस्लाम में दाख़िल होतीं वे भी ख़ामोशी के साथ इस दीन को दूसरी औरतों तक पहुँचाने में लग जातीं। दस साल की छोटी-सी मुद्दत में मक्का शहर के हर घर और अरब के हर बड़े क़बीले में इस्लाम का पैग़ाम पहुँच चुका था।

अगर मुसलमान कहीं कमज़ोर हैं तो उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे अपनी हालत को पूरी संजीदगी के साथ बदलने की कोशिश करें। अपनी कमज़ोर हालत पर मुत्मइन (सन्तुष्ट) रहना किसी और गरोह के लिए नुक़सानदेह हो या न हो, लेकिन मुसलमानों के लिए सख़्त नुक़सान का कारण बनता है।

मुसलमानों के लिए कमज़ोरी की हालत में रहना उनकी मज़हबी और तहज़ीबी पहचान के लिए ख़तरनाक होता है।

मक्का का तेरह साल का इतिहास बताता है कि मुस्लिम गरोह कमज़ोरी की हालत पर मुत्मइन (सन्तुष्ट) नहीं रहता। वह बराबर आगे बढ़ने की कोशिश करता है। मुख़ालिफ़ (विरोधी) ताक़तों के बिछाए हुए काँटे उसके क़दमों को लहूलुहान कर देते हैं, लेकिन उसकी रफ़्तार को सुस्त नहीं होने देते।

मक्का के तेरह साल के इतिहास में हमें कहीं हार नज़र नहीं आती, कहीं सुस्ती दिखाई नहीं देती, कहीं मायूसी या बुज़दिली का नाम व निशान नहीं मिलता। मक्का के तेरह साल का इतिहास दिलों को हौसला देने और रास्तों को रौशन करनेवाला इतिहास है। मक्का का दौर अपने मक़सद पर मज़बूती से जमे रहने और अपनी ज़िम्मेदारियों को इख़लास व लगन से पूरा करने का इम्तिहान था। जो लोग मक्का के इम्तिहान में कामयाब होते हैं वही मदीना के अहल (योग्य) होते हैं, और जो लोग मदीना के इम्तिहान (परीक्षा) में कामयाब होते हैं, मक्का के दरवाज़े उनके लिए खोल दिए जाते हैं।

—■—